दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2497 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 2

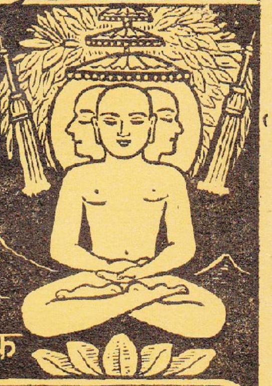

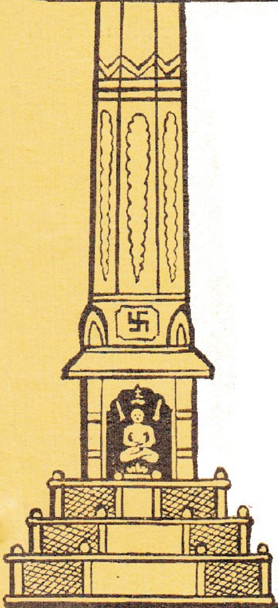

ब्रह्म जीवन

आत्मा में ही सच्चा सुख है—ऐसा समझकर आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की अभिलाषा जिसे जागृत हुई है और बाह्य विषयों में कहीं सुख नहीं है—ऐसा जानकर सर्व विषय जिसे नीरस लगते हैं; मेरे असंग चैतन्यतत्त्व को किसी परद्रव्य का संग नहीं है, पर के संग से मुझे सुख नहीं मिलता परंतु परसंग से रहित अपने स्वभाव में ही मेरा सुख है—इसप्रकार जिस जीव ने अपने अतीन्द्रिय सुख-स्वभाव की रुचि एवं लक्ष किया है, और चैतन्य की लगन से सर्व इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति छूट गई है ऐसे जीव को सच्चा ब्रह्म-जीवन—आत्मजीवन प्रगट होता है। ऐसे आत्मलक्षी ब्रह्म-जीवन द्वारा सर्व गुणों का विकास होता है।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

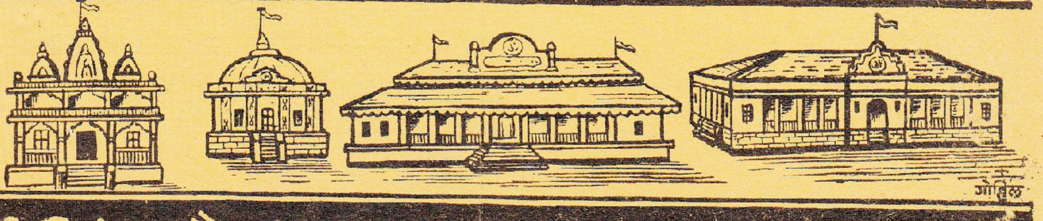

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जून : 1971] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (314) एक अंक 25 पैसा [जेठ : 2497

राजकोट शहर के भावभीने प्रवचनों में

पूज्य स्वामीजी ने कहा कि—

भाई! आनंद का धाम ऐसा तेरा आत्मा है। ध्रुव चिदानंद स्वभाव है, वह सत् है, उसे दृष्टि में ले। अंतर में सत् स्वभाव 'है' उसकी यह बात है।

❀

भाई! आत्म-कल्याण करने का यह मौसम है। जिसप्रकार मौसम आने पर वृक्ष फल-फूलों से भर जाते हैं, स्वाति-बिन्दुओं से मोती उत्पन्न होते हैं, उसीप्रकार चैतन्य में सम्यग्दर्शनादि रत्न उत्पन्न होने का यह मौसम है।

❀

रागरहित पवित्र पर्यायें जिसमें से प्रगट हों, ऐसी चैतन्य खान तो आत्मा है। उसके सन्मुख होने से, चैतन्य के गहरे पाताल से श्रद्धा-ज्ञान-आनंदादि की निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं।

❀

प्रभो! तेरी शक्तियाँ बड़ी गंभीर हैं, उन्हें किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। अनंत शक्ति-संपन्न आत्मा का अनुभव हुआ, वह निर्विकल्प शुद्धप्रमाण है; उसमें राग नहीं है।

❀

[देखिये टाइटल पृष्ठ -3]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह–संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

जून : 1971 ☆ जेष्ठ : वीर नि० सं० 2497, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 2

तेरा कारण तुझमें उपस्थित है, कारण का स्वीकार करते ही कार्य होता है।

❀ अरिहंत परमात्मा सर्वज्ञ परमदेव, वह कार्यपरमात्मा हैं।

❀ अंदर में त्रिकाल शुद्ध कारणपरमात्मा है, उसमें अंतर्मुख होकर उसकी भावना से वह कार्यपरमात्मा हुए।

❀ प्रत्येक आत्मा ऐसे कारणपरमात्मारूप से वर्तमान में विराज रहा है।

❀ तू अपने कारणपरमात्मा के सन्मुख होकर उसकी भावना कर, इसलिये उस कारण के अवलंबन से तेरे भी वैसा कार्य उत्पन्न होगा और तू कार्यपरमात्मा हो जायेगा।

❀ अपने में रहनेवाली कारणपरमात्मा की भावना ही कार्यपरमात्मा होने का उपाय है। राग की–संयोग की–निमित्त की किसी भी भावना से परमात्मा नहीं बना जाता, अर्थात् उससे सम्यग्दर्शनादि कार्य भी नहीं होता।

❀ जिसप्रकार कार्यपरमात्मा (केवलज्ञानादि) होने का उपाय यह एक ही है कि अपने कारणस्वभाव की भावना (उसमें एकाग्रतारूप परिणति) करना, उसीप्रकार सम्यग्दर्शनादि कार्य होने का भी एक ही उपाय है कि कारणस्वभाव की भावना करना, उसके सन्मुख परिणति करना। अंतर के स्वभाव में ही त्रिकाल ऐसा सामर्थ्य है कि उसके सन्मुख होते ही स्वयं सम्यग्दर्शनादि का कारण होकर सम्यग्दर्शनादि कार्य प्रगट करे!

❀ इसलिये तू निज कारणपरमात्मा के ध्यानपूर्वक उसकी भावना कर।

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलते हैं'

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं।

[समयसार-नाटक के प्रवचनों से - लेखांक - 3]

❀ शास्त्रकार कहते हैं कि अहो, भगवान अरिहंतदेव ने दिव्य वाणी से शुद्धात्मा बताया। आत्मा का शुद्धस्वरूप जिनके प्रसाद से प्राप्त हुआ, उन भगवंत के प्रति हमारे हृदय में परम भक्ति बहती है। इस भक्ति के कारण हमारे सुबुद्धि प्रगटी है और कुबुद्धि दूर हो गई है; अर्थात् भगवान ने आत्मा का जैसा शुद्धस्वरूप बताया उसके अनुभव से सम्यग्ज्ञानरूप सुबुद्धि प्रगटी है। देखो, यह आत्मा का ज्ञान होता है, वही सच्ची सुबुद्धि है, इसके बिना सारी पढ़ाई कुबुद्धि है, आत्महित के लिए वह काम नहीं आती।

❀ जिसने अरिहंतदेव को पहचाना, और मेरा आत्मा भी ऐसा ही है, ऐसा जाना; उसके अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा के साथ एकता होने पर राग के साथ की एकता छूट जाती है और स्वानुभव में उसके श्रद्धा-ज्ञानलोचन स्थिर हो जाते हैं। वह सर्वज्ञ के मार्ग के परम आदरपूर्वक उसके अनुभव की पिपासा से स्थिरचित्त होकर उसका प्रयत्न करता है।

❀ फिर, भगवान की भक्ति से ओतप्रोत हमारा चित्त कभी आरतीरूप होकर अर्थात् अत्यंत प्रीतिरूप होकर प्रभु के सन्मुख बलि-बलि जाता है; अंतर में अपने चैतन्यप्रभु के सन्मुख आता है, और बाहर में सर्वज्ञ परमात्मा के सन्मुख होकर उनकी भक्ति करता है—ऐसी भक्तिपूर्वक और अध्यात्मरस के घोलनपूर्वक यह समयसार नाटक-ग्रंथ रचा जा रहा है। उसका भावपूर्वक श्रवण करने पर क्या होता है ? तो कहते हैं कि हृदय के फाटक खुल जाते हैं और ज्ञान-निधान प्राप्त होता है।

❀ अहो, यह 'समयसार' तो मोक्ष में जाने के लिए शकुन है। जिसे यह समयसार मिला उसे मोक्ष का उत्तम शकुन हुआ। अहो ! तीर्थंकर केवलीप्रभु के पास से सीधी आई हुई

वाणी इस समयसार में है। जिसको ऐसा समयसार सुनने को मिला, उसके तो मोक्ष में जाने का शकुन हो गया... इसका भाव समझनेवाला आनंदपूर्वक मोक्ष में जावेगा। यह समयसार शास्त्र और अंदर उसके वाच्यरूप शुद्धात्मा, वह मोक्ष में जाने की सीढ़ी हैं; जिसको ऐसा समयसार का श्रवण मिला और उसके भावों की रुचि हुई, उसके हाथ में मोक्ष में जाने की सीढ़ी आ गई, उसको मोक्ष में जाने का शकुन हो गया। अब वह जीव कर्म का वमन करके मोक्ष में गमन करता है। रागादि भावकर्मों को छोड़कर वह आत्मा के स्वभाव को साधता है।

❀ प्रमोदपूर्वक गुरुदेव कहते हैं कि—अहो! आनंदरस का घूँट इस समयसार में भरा है; उसके रस में ज्ञानीजन लीन होते हैं—समयसार में बताये हुए अध्यात्मरस में ज्ञानी ऐसे लीन होते हैं कि जैसे पानी में नमक घुल जाता है, वैसे ही उनकी परिणति अंतर्मुख होकर शुद्ध चैतन्यस्वभाव में घुल जाती है—लीन हो जाती है।

❀ समयसार समझते ही मोक्ष का सरलमार्ग हाथ में आ गया। जैसा अपना शुद्ध आत्मा है, वैसा देखा, उसके आनंद में रमते-रमते वह मोक्ष को सुगमता से साधता है। सम्यग्दर्शनादि गुणों का तो यह पिण्ड है—इसके अभ्यास से सम्यग्दर्शनादि गुणों का समूह प्रगट होता है। मुमुक्षुओं को अंतर के भाव से शुद्ध आत्मा के लक्षपूर्वक—इस समयसार के अभ्यास का फल उत्तम सुख की प्राप्ति है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने स्वयं अंतिम गाथा में बताया है।

* * *

अब तो समयसार के प्रचार का युग है। मुमुक्षु जीवों में घर-घर समयसार का अभ्यास हो रहा है (किसके प्रताप से? गुरु कहान के प्रताप से।)

* * *

❀ जो इस समयसार के 'पक्षी' हैं-अर्थात् समयसाररूपी पंख जिनको मिले हैं, वे पक्षी ज्ञानगगन में उड़ते हैं। समयसार में जैसा शुद्धात्मा कहा, वैसा लक्ष में लेकर उसका जिसने पक्ष किया, वह समयसार का पक्षी, समयसाररूपी पंखवाला पक्षी, ज्ञानरूपी आकाश में निरालंबी होकर विहार करता है—अर्थात् विकल्प का पक्ष छोड़कर

ज्ञानस्वभाव का अनुभव करता है। समयसार का पक्ष अर्थात् शुद्धात्मा का पक्ष। उसका विरोध करनेवाले समयसार के विपक्षी जीव तो जगत के जाल में भटकते हैं। शुद्धात्मारूपी समयसार का पक्ष करनेवाले जीव शुद्धनयरूपी पंख से ज्ञानजगत में उड़ते हैं अर्थात् निरालंबीरूप से आकाश जैसे अपार ज्ञानस्वभाव का अनुभव करते हैं।

❀ यह समयसार तो शुद्ध सोने जैसा निर्मल है। सोने से इसके अक्षर लिखवाये जावें तो भी महिमा पूरी न हो। सौटंच के सोने जैसे शुद्धभाव इस समयसार में भरे हैं। समयसार आत्मा के गंभीर भावों से परिपूर्ण विराटस्वरूप है। ऐसे समयसार का श्रवण करते ही—अर्थात् उसके वाच्यरूप शुद्धात्मा के लक्ष से भाव-श्रवण करने पर भव्य जीवों के हृदय के फाटक खुल जाते हैं, सम्यग्दर्शनादि अपूर्व भाव प्रगट होते हैं।

❀ यह समयसार—जो भगवान की वाणी है, उसके भावों की परीक्षा करके निर्णय करे तो आत्मा की स्वानुभूति हो जाये; उसके फिर यह शंका न रहे कि मेरे अभी अनंत भव होंगे। वह तो निःशंक हो जाय कि अहो ! समयसार ने तो निहाल कर दिया। मैं संसार से छूटकर मोक्षमार्ग में आ गया... समयसार ने तो अशरीरी चैतन्यभाव बताया। ऐसा समयसार सुनकर जिसने आत्मा की प्रतीति की, उसके लिए मोक्ष का फाटक खुल गया... चैतन्य का कपाट खुल गया। (क्रमशः)

अरिहंतों का पंथ... वही हमारा पंथ

तुम्हारा पंथ क्या ? पंथ अर्थात् मार्ग; अरिहंत भगवंतों का जो मार्ग है, वही हमारा मार्ग है, हम अरिहंत के पंथ के हैं।

अरिहंतों का पंथ अर्थात् आत्मा के आश्रय से प्रगटित शुद्ध रत्नत्रय; उसी मार्ग से अरिहंत मोक्ष में गए हैं, और हमारा भी वही मार्ग है। ऐसे शुद्ध रत्नत्रयरूप अरिहंत मार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग से मुक्ति नहीं है—नहीं है।

शुद्धरत्नत्रय के अलावा दूसरे किसी रागादि भाव से जो मोक्ष होना माने, वह अरिहंत के मार्ग को नहीं मानता, अतः वह अरिहंत के पंथ में भी नहीं है।

बालकों की कलम से....

पिछले दिनों जैन विद्यार्थी गृह सोनगढ़ के विद्यार्थियों के लिए संपादक द्वारा नियोजित 'व्याख्यान-लेखन-स्पर्द्धा' में सभी विद्यार्थियों ने उमंग से भाग लिया था और इसप्रकार अध्यात्म-लेखन के संस्कार जागृत हुए थे। श्रेष्ठ अंक लेनेवाले पाँच विद्यार्थियों के नाम इस भाँति हैं—(1) भास्कर पोपटलाल अंक 84 (2) जयेशकुमार जयंतीलाल अंक 80 (3) मगनलाल भीमजी अंक 78(4) भरतकुमार वीरचंद अंक 77 (5) कमलेश शांतिलाल अंक 65। भाग लेनेवाले विद्यार्थियों के 40) का इनाम दिया गया (इस इनाम की रकम श्री गंगाबेन खुशालदास की ओर से प्राप्त हुई थी) 12-14 वर्ष की आयु के छोटे विद्यार्थियों की कलम से लिखे गए व्याख्यान में से कुछ भाग यहाँ दिया जा रहा है।

❀ जो जानता है, वह आत्मा है; शरीर जड़ है; शरीर और आत्मा की भिन्नता का भान, वह भेदज्ञान है। ऐसे भेदज्ञान से आत्मलाभ होता है। और शरीर तथा आत्मा को एक मानना, वह अभेदबुद्धिरूप मिथ्याज्ञान है और उससे संसार होता है।

❀ पर से भेद और स्व से अभेद ऐसा सम्यग्ज्ञान है।

❀ जो जानता है, वह जीव है; जीव ज्ञानानंदस्वरूप है, वह अतीन्द्रिय आनंदमय है। शरीर अचेतन, जड़, नाशवान है। वह कुछ जानता नहीं है। लक्षणभेद द्वारा स्व और पर को (चेतन और अचेतन को) भिन्न जानना चाहिए; तभी धर्म होगा।

❀ अज्ञानी शरीर में अहंबुद्धि करता है।

❀ भगवान आत्मा चेतन है, उसमें राग नहीं है। चेतन को चेतन और अचेतन को अचेतन

जानकर अपने चेतनस्वभाव का अनुभव करना, वह प्रज्ञा है और वह मोक्ष का कारण है।

❀ जैसे हंस दूध और पानी को भिन्न कर देता है, उसीप्रकार मोक्ष की साधना के लिए विवेक द्वारा जीव और अजीव को भिन्न जानना चाहिए।

❀ पुद्गलादि परद्रव्य में अहंबुद्धि छोड़कर राग-द्वेष दूर करके आत्मस्वभाव में लीन होना चाहिए।

❀ भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र है; उसमें से राग-द्वेष दूर करके आत्मस्वरूप में लीन होते ही आनंद प्राप्त होता है। अपना आनंद अपने में है; शरीर में से या बाहर से आनंद नहीं आता।

❀ अज्ञानी जीव कहता है कि शरीर और आत्मा एक ही है, मैं ही उसका कर्ता हूँ, इसप्रकार जड़ का कर्ता चेतन को मानता है।

❀ मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा अज्ञानी नहीं जानता, और शुभ-अशुभराग मेरा कार्य है, उसका मैं कर्ता हूँ, ऐसा वह मानता है। ऐसी अज्ञानबुद्धि से ही कर्म-बंधन होता है।

❀ जब स्वरूप का भेदज्ञान करे, तब जीव को सम्यग्ज्ञान होता है; तब वह जानता है कि मैं ज्ञान हूँ और राग मेरा स्वरूप नहीं है; अर्थात् वह राग का कर्ता नहीं होता, उसे कर्म नहीं बँधते—इसका नाम धर्म है।

❀ जड़ कर्म और ज्ञान जुदा है। कर्म ने आत्मा के ज्ञान को ढक नहीं दिया है। जीव सच्चा पुरुषार्थ करे तो सच्चा ज्ञान प्रगटे और जब सच्चा ज्ञान प्रगट हो, तब कर्म टल जाते हैं। ज्ञान और कर्म जुदा है—ऐसा धर्मी जानता है।

❀ राग-द्वेष-हर्ष-शोक का वेदन तो अज्ञानी का वेदन है। ज्ञानी तो अपने ज्ञानस्वरूप तथा आनंद का ही वेदन करता है। जड़ को तो कोई वेदन होता नहीं। आनंद का वेदन, वही ज्ञानी का वेदन है।

❀ प्रत्येक जीव को ऐसा भेदज्ञान करके साधकदशा प्राप्त करनी चाहिये।

❀ शरीर जड़ है; दु:ख और राग-द्वेष भी जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं है; जीव तो ज्ञानस्वरूप है। जानने में दु:ख नहीं होता। ज्ञानस्वरूप में तो आनंद है।

❀ शरीर में बिच्छू ने काटा, उसका जीव को ज्ञान हुआ, वह कहीं दु:ख का कारण नहीं है; परंतु शरीर मेरा और बिच्छू ने मुझे काटा—ऐसी मिथ्याबुद्धि ही महा दु:ख का कारण होती है। बिच्छू ने काटा और दु:ख हुआ, इन दोनों से धर्मी अपने ज्ञानस्वरूप को भिन्न जानता है। ऐसा जो जाननेरूप भाव, वही सच्चा आत्मा है। दु:ख, वह वास्तव में आत्मा नहीं है।

❀ प्रभु! ऐसे आत्मा का तू अनुभव कर! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की सुगंध भरी है... शरीर मेरा, मैं उसका कर्ता—इसप्रकार अज्ञान और राग की गंध अनादि से बैठी है, वह निकाल दे, और अंतर में देह से भिन्न, राग से भिन्न आत्मा के आनंद की सुगंध ले।

❀ चेतनस्वरूप भगवान आत्मा है, वह शरीर और राग का अकर्ता है। जहाँ तक राग और ज्ञान को एक अनुभव करता है, वहाँ तक जीव को धर्म नहीं होता।

❀ राग में रुका हुआ वीर्य तो अज्ञान है, राग से भिन्न आत्मा का ज्ञान करने में अनंत वीर्य है।

❀ राग और पुण्य-पाप, वह तो मैला है, भगवान आत्मा पवित्र है।

❀ छहों द्रव्य के गुण-पर्याय अपने अपने में हैं। जीव-अजीव के गुण-पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। कोई एक-दूसरे को करता नहीं है; ऐसा सर्वज्ञ भगवान के आगम में कहा है।

❀ राग, वह ज्ञान का कार्य नहीं है।

❀ पर से भिन्न अपने स्वरूप का विचार करना।

❀ राग तो अन्धकार है, उसमें से ज्ञानप्रकाश नहीं आता। ज्ञानसूर्य में रागरूपी अंधकार नहीं है। ज्ञानप्रकाश का अनुभव हो, वहाँ राग का अंधकार दूर हो जाता है।

❀ ज्ञान में राग नहीं है, राग में ज्ञान नहीं है।

❀ मिथ्यात्व महान पाप है। चेतन-अचेतन को भिन्न जानना सम्यग्ज्ञान है। शरीर और आत्मा को एक मानना अज्ञान है। अज्ञान महान पाप है।

❀ शरीर का हिलना, चलना, बोलना, वह जड़ की क्रिया है; वह आत्मा की क्रिया नहीं है। आत्मा की क्रिया तो ज्ञान है।

❀ सूर्य का प्रकाश होने पर अंधकार का नाश होता है, उसीप्रकार सम्यग्ज्ञान सूर्य के उगने

पर मिथ्यात्व और राग का नाश हो जाता है।

❀ शरीर को अपना माननेवाला जीव आत्मा का साधन नहीं कर सकता। देह से भिन्न आत्मा को जाननेवाला जीव आत्मा का साधक होकर सिद्धपद को पाता है।

❀ शरीर से भिन्न चैतन्य को जाने, वह शरीर रहित पद को पाता है।

❀ एक आत्मा वह अपना काम करे और जड़ का भी काम करे—ऐसे दो कार्यों को नहीं करता। आत्मा अपने ज्ञान का कार्य करे किंतु जड़ का कार्य नहीं करता; इसप्रकार भिन्नता है।

❀ आत्मा जड़ से भिन्न अखंड आनंदस्वरूप है। उसका ज्ञान करने पर साधकदशा आती है। व्यवहार के आश्रय से या राग से साधकपना नहीं आता।

❀ यह तो भगवान का मार्ग है। इसमें कायर का काम नहीं है। राग का आलंबन लेना चाहे, वह तो कायर है, वह मोक्ष को नहीं साध सकता। यह तो रागरहित वीतराग का मार्ग है।

❀ चैतन्य-हंस को पुण्य-पापरूपी कंकड़ों की खुराक नहीं होती—वह तो भेदज्ञानरूपी चोंच से सच्चे मोतियों का चारा चुगनेवाला है। अतीन्द्रिय आनंद का पिंड आत्मा है, उसमें विकार का वेदन नहीं है। विकार के वेदन से सिद्ध नहीं होते। विकार से भिन्न स्वभाव को भेदज्ञान से जानकर, ज्ञानस्वभाव के वेदन से सिद्धपद प्राप्त होता है।

❀ ज्ञान में से विकार का कर्तृत्व छोड़े, तभी सम्यग्ज्ञान और मोक्षमार्ग होता है। वह जीव ज्ञान का कर्ता और विकार का अकर्ता होकर मोक्ष को साधता है।

❀ राग के कारण से जीव को शुद्धता नहीं होती। राग का-व्यवहार का आश्रय छोड़े और स्वभाव का आश्रय करे, तभी शुद्धता होती है।

❀ जो चीज़ अपने में नहीं है और हम स्वयं जिसमें नहीं हैं, उसका कार्य अपना मानने पर जीव अपने आत्मा का सच्चा कार्य (भेदज्ञान) नहीं कर सकता, स्व-पर को बराबर भिन्न जाने, तभी आत्मा के अनुभव से जीव को भेदज्ञान होता है और तभी धर्म होता है।

❀ जय जिनेन्द्र ❀

भगवान आत्मा निजशक्ति से उल्लसित होता है

राजकोट में वीर संवत् 2497 वैशाख शुक्ला पंचमी से ज्येष्ठ कृष्णा तीज तक
समयसार की 47 शक्तियों पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से

❀ सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि भाई! तू आत्मा है, तुझमें सर्वज्ञस्वभाव आदि अनंत शक्तियाँ विद्यमान हैं; उन शक्तियों का वर्णन इस समयसार में किया है। अनुभव में कलम डुबो–डुबोकर इस समयसार की रचना हुई है।

❀ अनंत शक्तियाँ आत्मा में एकसाथ हैं; उस शक्तिमान आत्मद्रव्य को पहिचानकर अनुभव में लेने से अनंत शक्तियों का स्वाद एकसाथ आता है; अनंत शक्तियाँ एकसाथ निर्मलरूप से परिणमित होती हैं—उल्लसित होती हैं।

❀ अपनी अनंत शक्तियों को नहीं जाना और अपने को रागादि जितना माना, इसलिये पर्याय में जीव की शक्ति मुँद गई है और वह दुःखी होकर संसार में भटकता हूँ। इसप्रकार निजशक्ति का अज्ञान, वह अधर्म है।

❀ अपने स्वभाव की शक्ति का भान होने पर रागादि में से आत्मबुद्धि उड़ जाये और स्वभाव के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद अनुभवा में आये, वह धर्म है, तथा वह मोक्षमार्ग है।

❀ यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तेरा स्वरूप ज्ञान है; अकेला ज्ञान नहीं परंतु ज्ञान के साथ अनंतगुणों का परिणमन भी है। तू ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है।

❀ प्रत्येक द्रव्य में अनंत शक्तियाँ हैं; जड़ में भी अनंत शक्तियाँ हैं; परंतु यहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा की शक्तियों का वर्णन है; क्योंकि आत्मा के स्वभाव को पहिचानने का प्रयोजन है।

❀ प्रथम जीवत्वशक्ति कहकर आत्मा का जीवन बतलाते हैं। आत्मा का जीवन किससे

टिकता है ?—तो कहते हैं कि चैतन्यमय भावप्राणरूप जीवत्व शक्ति से आत्मा सदा जीता है—जीवरूप से टिकता है।

❀ तेरा जीवन इन शरीर–मन–इन्द्रियों या आयु द्वारा नहीं है; आयु तो शरीर के संयोग की स्थिति का कारण है, उसके द्वारा कहीं जीव टिकता नहीं है, जीव तो अपने चैतन्य जीवन द्वारा जीता है। आयु जीव की नहीं है, आयु पूर्ण होने पर जीव मर नहीं जाता, वह तो चैतन्यप्राण द्वारा जीवित ही है।

❀ अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवान ऐसा चैतन्य जीवन जीते हैं—वही सच्चा जीवन है।

❀ नेमिनाथ भगवान की भाँति अपना आत्मा भी चैतन्य जीवन जीनेवाला है। अपने जीवन के लिये अपने अस्तित्व के लिये अन्य किसी की आवश्यकता नहीं होती।

❀ जीव को जीवत्व का कारण अपने चैतन्यमात्र–भावप्राण हैं, और उन भावप्राणों को धारण करने का कारण जीवत्वशक्ति है। आत्मा अपनी जीवत्वशक्ति से चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करके सदा जीवित है। आत्मा स्वयं 'जीवंतस्वामी' है।

❀ सीमंधर परमात्मा को विदेहक्षेत्र के जीवंतस्वामी कहा गया है; जीवंत अर्थात् विद्यमान। उसीप्रकार जीवनशक्ति का स्वामी ऐसा जीवंतस्वामी आत्मा अपने चैतन्यप्राण द्वारा सदा विद्यमान है।

❀ जिसप्रकार जल से भरे हुए सरोवर को छोड़कर हिरन मरीचिका के पीछे दौड़–दौड़कर हाँफ जाये, तथापि उसे पानी नहीं मिलता—कहाँ से मिले ? वहाँ पानी है ही कहाँ ? उसीप्रकार अनंत शक्ति के जल से भरपूर निर्मल चैतन्य सरोवर—जो स्वयं है, उसे भूलकर जीव मरीचिका जैसे राग में दौड़ता है और दु:खी होता है; सुख की बूँद भी उसे नहीं मिलती... कहाँ से मिले ? राग में सुख है ही कहाँ ? ....भाई, सुख का सरोवर तो तुझमें छलाछल भरा है, उसमें देख तो अपने आत्म–सरोवर में से तुझे सुख का अमृत मिलेगा और तेरी तृषा शांत हो जायेगी।

❀ आत्मा और रागादि भाव—दोनों के स्वाद में बड़ा अंतर है; परंतु दोनों के स्वाद का पृथक् अनुभव करनेरूप अज्ञानी की भेद–संवेदन शक्ति ढँक गई है और ज्ञानी को

शुद्धचेतना द्वारा वह भेद-संवेदन शक्ति खिल गई है... राग से भिन्न आत्मा की प्रतीति होने से चैतन्य का भंडार खुल गया है।

❀ आत्मा की शक्ति द्वारा जिसने आत्मा को जाना, उसके जन्म-मरण का अंत आ गया और मोक्ष का निधान उसे मिल गया... अपने सुख-शांति का सागर अपने में ही उछलता दिखायी दिया।

❀ एक-एक शक्ति के भेद द्वारा आत्मा पकड़ में नहीं आता; आत्मस्वभाव के वेदन में सर्व शक्तियों के वेदन का समावेश हो जाता है। यहाँ समझाने के लिये एक-एक शक्ति का भेद करके अलग-अलग वर्णन किया है।

❀ आत्मा का जीवन चैतन्यमय है, उसमें जड़ता किंचित् नहीं है। इसलिये ज्ञानमय परिणमन ही आत्मा का जीवन है। चेतना आत्मा के सर्व भावों में व्यापक है। ऐसी चेतनायुक्त आत्मा का ग्रहण करने पर उसकी सर्व शक्तियाँ एकसाथ स्वच्छरूप से उल्लसित होती हैं। पर्याय में स्वाद आये बिना—अनुभव हुए बिना यह निर्णय कैसे हो सकता है कि—'द्रव्य-गुण ऐसे हैं?'—इसलिये द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में निर्मल शक्ति व्याप्त हो गई है और उन तीनों में राग का अभाव है।—ऐसे आत्मा को ज्ञानी जानता है।

❀ अनंत शक्तिवान आत्मा का अनुभव हुआ, वह निर्विकल्प शुद्धप्रमाण है। उस प्रमाण में राग नहीं आता।

❀ परमभावरूप ज्ञायक आत्मा, उसके सन्मुख होकर अनुभव किया, तब 'मेरा आत्मा ऐसा शुद्ध है'—ऐसा निर्णय हुआ। ऐसे अनुभव बिना मात्र धारणा से 'शुद्ध-शुद्ध' कहे, उसे वास्तव में शुद्ध आत्मा की खबर ही नहीं है।

❀ निर्विकल्प चैतन्य-रस का अनुभव करने पर सुख का स्वाद आये, तब सुखशक्तिवान आत्मा को माना कहा जाये। (सुख के साथ अनंत गुणों का भी वेदन होता है।) पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद सहित पूर्ण सुखस्वभाव की प्रतीति होती है।

❀ पर की ओर के भावों में शांति नहीं है। मानों जमकर शीतल हिमखंड हो गया हो—ऐसी शांति तो आत्मा के वेदन में है।

❀ मैं स्वयं सर्वज्ञ होनेयोग्य हूँ, मुझमें सर्वज्ञस्वभाव है—इसप्रकार जिसने स्वोन्मुख होकर प्रतीति की, उसके हृदय में सर्वज्ञ विराजमान हुए। सर्वज्ञ की बातें करे और अपने सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति न करे तो उसने सर्वज्ञ को सचमुच जाना ही नहीं है। सर्वज्ञ को यथार्थतया तब जाना कि जब स्वसन्मुख होकर आत्मा के ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार किया।

❀ ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का विश्वास करने जाये, वह राग में खड़ा नहीं रहता। राग से भिन्न होकर ज्ञानस्वभाव में आया, तब अरिहंत के मार्ग में आ गया; वह अल्पकाल में अरिहंत होगा—ऐसा ही अरिहंतों ने ज्ञान में देखा है। उसके अनंत भव नहीं होते, और भगवान भी ऐसा ही देखते हैं।

❀ धर्मी जीव साधक होकर केवलज्ञान को बुलाता है। जिस स्वभाव की सन्मुखता द्वारा सम्यग्ज्ञानरूपी दूज का उदय हुआ, उसी स्वभाव की सन्मुखता द्वारा केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होना है। जगत में सर्वज्ञ हैं और मैं भी सर्वज्ञता की ओर ही जा रहा हूँ—ऐसी धर्मी को निःशंकता है।

❀ अहा, लोकालोक को जानने का सामर्थ्य तो मेरी शक्ति में विद्यमान है। ऐसे ज्ञाता-स्वभाव को श्रद्धा में लिया, वहाँ धर्मी को परज्ञेय के ओर की आकुलता नहीं रहती। सर्वज्ञता तो मेरे निज-गृह में ही भरी है।

❀ आत्मा की प्रतीति में उसके सर्वगुणों की प्रतीति आ जाती है। गुणों की प्रतीति के लिये गुणों के भेद नहीं करना पड़ते। गुणों के भेद करने से तो विकल्प होता है। निर्मल शक्ति में विकल्प नहीं है और विकल्प द्वारा निर्मल शक्ति प्रतीति में नहीं आती।

❀ आत्मा स्वयं अपने को-स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है; उसके स्वसंवेदन में किसी दूसरे का आलंबन नहीं है। जिसे राग में लाभबुद्धि है अर्थात् राग में एकत्वबुद्धि है, उसे आत्मा का स्वसंवेदन नहीं होता। स्वसंवेदन राग से अत्यंत भिन्न है।

❀ स्वसंवेदन तो अतीन्द्रिय आनंद है और उसे 'आत्मा' कहा है; स्व-संवेदन में स्वभाव की एकता होने से विकल्प के साथ की एकता टूट जाती है।

❀ अपने शुद्ध गुण-पर्यायों से जो लक्षित होता है, उतना ही आत्मा है; यह शुद्धप्रमाण का विषय है; इसमें रागादि परभाव नहीं आते।

❀ प्रकाशस्वभाव के कारण आत्मा स्वयं प्रकाशमान ऐसे स्पष्ट स्व-संवेदनरूप है। अपनी चेतना द्वारा स्वयं अपने को अत्यंत स्पष्ट प्रकाशित करता है। आत्मा को स्वयं अपने को जानने में किसी राग का या इन्द्रियों का अवलंबन नहीं है। राग के और इन्द्रियों के अवलंबन से जो ज्ञात हो, वह आत्मा नहीं... स्वानुभव में स्वयं अपने को प्रत्यक्षरूप करता है, ऐसा प्रकाशस्वभावी आत्मा है।

❀ भाई! इन्द्रियाँ जड़ हैं, उनके द्वारा तेरा ज्ञान नहीं होता। इन्द्रियों का अवलंबन लेने जायेगा तो अपने आत्मा को नहीं जान सकेगा। मति-श्रुतज्ञान चतुर्थ गुणस्थान में भी इन्द्रिय-मन का अवलंबन छोड़कर, आत्मसन्मुख होकर अतीन्द्रिय प्रत्यक्षरूप होकर स्वयं अपना अनुभव करते हैं। मति-श्रुतज्ञान भी निर्विकल्प होकर सीधे आत्मस्वभाव में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा स्व-संवेदनज्ञान प्रगट हो, तब धर्म हुआ कहा जाता है।

❀ अरे, अपने ज्ञान से तू स्वयं छिपा रहे—यह कैसे हो सकता है? आत्मा जिसमें प्रत्यक्षरूप न हो, वह ज्ञान नहीं है। सम्यग्दर्शन तब होता है, जब ज्ञान अंतर्मुख होकर स्वयं अपने आत्मा को प्रत्यक्ष स्व-संवेदनरूप करता है।

❀ स्व-संवेदन प्रत्यक्षपने में राग का—व्यवहार का आलंबन नहीं है, उसमें परमार्थ स्वभाव का ही आलंबन है—ऐसा प्रत्यक्षपना, वह स्वसत्तावलंबी है, इसलिये वह निश्चय है; और परोक्षपना रहे, वह परसत्तावलंबी होने से व्यवहार है।

❀ आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष अनुभवगम्य होता है—ऐसी निज-गृह की अभी जिसे खबर न हो, उसे धर्म कहाँ से होगा? और परगृह में भ्रमण कहाँ से रुकेगा? आत्मा की स्वसंवेदन शक्ति को जो पहिचाने, वह अपने स्वानुभव के लिये किसी भी रागादि परभाव का अवलंबन नहीं माँगता; और जो परभाव का अवलंबन मानता है, वह आत्मशक्ति को नहीं जानता।

❀ वही सच्चा विद्वान है जो अपने ज्ञान को अंतरोन्मुख करके पूर्णानंद सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को प्रतीतिरूप तथा स्वसंवेदनरूप करता है। आत्मा के स्वसंवेदन से रहित

जितना ज्ञातृत्व है, वह सब थोथा है। जगत के जादू में जीव चकित हो जाता है परंतु अपने चैतन्य का महान चमत्कार है, उनकी उसे खबर नहीं है। अहो, चैतन्य-चमत्कार जगत में सर्वोत्कृष्ट है... जिसका चिंतन करने से अपूर्व आनंद होता है।

❀ चैतन्य के स्वसंवेदन की अद्भुत महानता है, और मिथ्यात्व में अत्यंत हीनता है—परंतु जगत को उसकी खबर नहीं है।

❀ चैतन्य का स्वसंवेदन करने के लिये वीरता से जो जागृत हुआ, वह ऐसी दीनता नहीं करता कि मुझे कुछ इंद्रियों के आलंबन की आवश्यकता होगी अथवा मुझे शुभ विकल्प का आधार चाहिये। वह तो चैतन्य की वीरता से कहता है कि—मैं चैतन्य अकेला अपनी स्वसंवेदन शक्ति से अपने आत्मा को प्रत्यक्ष करूँगा, उसमें मुझे अन्य किसी की सहायता नहीं चाहिये। अपने चैतन्य के अतीन्द्रिय भाव से मैं जागृत हुआ, उसमें अन्य का सहारा कैसा?

❀ जिसप्रकार युद्ध के मौके पर राजपूत का शौर्य उछल पड़ता है, उसीप्रकार चैतन्य के साधना के मौके पर मुमुक्षु आत्मा की शूरवीरता जाग उठती है और उसकी परिणति स्वभावोन्मुख उल्लसित हो जाती है। अपने स्वभाव के उल्लास के निकट अन्य किसी बाह्यभाव के सामने वह नहीं देखता।

❀ शुद्धनय के आश्रित हुई जो शुद्धपर्याय, उसे भी शुद्धनय के विषय में सम्मिलित कर दिया है और उसी को आत्मा कहा है। इसप्रकार समयसार की 14 वीं गाथा में शुद्धात्मा की अनुभूति को 'आत्मा' ही कह दिया है, उस अनुभूति में कोई भेदविकल्प नहीं है, अकेले आनंदस्वरूप आत्मा का सीधा वेदन वर्तता है।

❀ विकल्प और आत्मा के बीच प्रज्ञा का सीधा प्रहार हो—ऐसा भाव जो समझे, वही भगवान की वाणी को समझा है। अहो, भगवान की वाणी आत्मा और विकल्प के बीच प्रहार करके भेदज्ञान कराती है और अज्ञानरूपी ताले तोड़कर चैतन्य के निधान खोल देती है।

❀ विकल्प और आत्मा के बीच प्रहार करके उन्हें पृथक् करना है, वह प्रहार विकल्प द्वारा नहीं हो सकता परंतु ज्ञान द्वारा ही वह प्रहार हो सकता है। उस ज्ञान ने आत्मा को

तो अपने ज्ञानस्वरूप में मग्न किया और विकल्प को दूर कर दिया।—इसप्रकार राग से पृथक् होकर वह ज्ञान मोक्ष की ओर परिणमित हुआ—आनंदस्वभाव में एकाग्र हुआ।

❀ अहो, इस तत्त्व को अनुभव में लेकर प्राप्त करें, ऐसे जीव तो लाखों-करोड़ों में कोई विरले ही होते हैं। ऐसे तत्त्व का प्रेम करके उसकी प्राप्ति की अभिलाषा करनेवाले अनेक जीव होते हैं परंतु अनुभव करनेवाले तो विरले ही होते हैं। ऐसी विरलता जानकर अंतर के अपूर्व उद्यमपूर्वक स्वयं उन विरलों में सम्मिलित हो जाना चाहिये।

गुरुदेव के साथ गगन-यात्रा

[लेखक : ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

अहमदाबाद से जयपुर जाते हुए पूज्य गुरुदेव के साथ वायुयान में बैठे-बैठे ग्यारह हजार फीट की ऊँचाई पर यह लेख लिखा जा रहा है। ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी के दोपहर को पूज्य गुरुदेव के साथ अहमदाबाद से जयपुर जा रहे हैं। तीस मुमुक्षु यात्रियों को लेकर वायुयान आकाश में उड़ रहा है। वायुयान को भी शायद गौरव हो रहा होगा कि जिसप्रकार मैं गगन में ऊँचाई पर उड़ रहा हूँ, उसीप्रकार अंतर के निरालंबी ज्ञानगगन में उड़नेवाले पवित्र संतों की पावन चरण-रज मुझे प्राप्त हुई है!....ऐसे गौरवपूर्वक वायुयान तो ऊपर ही ऊपर चढ़ता जा रहा था और नीचे बिलकुल छोटी-सी दिखायी देनेवाली धरती ज्ञान की महानता को प्रकाशित कर रही थी। ढाई सौ मील प्रति घंटे की गति होने पर भी ऐसा अनुभव हो रहा था मानो वायुयान

धीरे-धीरे शांति से उड़ रहा हो। उससे यह फलित होता था कि चाहे जितनी शीघ्रता से कार्य करने पर भी ज्ञान तो स्वयं शांतस्वभावी है, उसमें आकुलता नहीं है। दुनिया छोटी है, ज्ञान विशाल है।

अहा! ऐसा लग रहा था मानों गुरुदेव के साथ दुनिया से दूर-दूर किसी धर्मनगरी में जा रहे हों... मार्गद्रष्टा संत हमें इसीप्रकार दूर-दूर विदेहक्षेत्र में ले जाकर सीमंधर भगवान के दर्शन तो नहीं करायेंगे?—इसप्रकार विदेहक्षेत्र में विराजमान प्रभुजी के दर्शनों की भावना जागृत होती थी... गुरुदेव के साथ मोक्ष-विहार की भावना जागृत होती थी।

अहमदाबाद हवाई अड्डे पर सैकड़ों भक्तों ने गुरुदेव को जयजयकार पूर्वक हार्दिक विदा दी और तीन बजकर दस मिनट पर वायुयान आकाश में उड़ चला। पूज्य गुरुदेव गंभीर चिंतन में बैठे हैं और कभी-कभी ज्ञान से भिन्न ऐसी दुनिया का दृश्य वायुयान की खिड़की से देखते हैं। भक्तजन तो गुरुदेव के साथ गगन-विहारी हर्षोल्लास में मग्न हो रहे हैं... और गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक भक्ति व्यक्त करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पूज्य बहिनश्री-बहिन की जोड़ी भी गुरुदेव के साथ इस गगन-विहार के अवसर पर विदेहक्षेत्र के मधुर संस्मरणों में तल्लीन दिखायी देती है और किसी अनुपम भावना में झूल रही है।

अब गुजरात की सीमा पार करके राजस्थान में प्रवेश कर रहे हैं... और वायुयान आबू शिखर के ऊपर से गुजर रहा है। इतने में पूज्य बहिनश्री-बहिन ने आनंदपूर्वक ज्ञान-गगन में विहरनेवाले गुरुदेव की जय बुलवाकर भक्ति गवाना प्रारंभ किया—

'जय बोलो जय बोलो—श्री वीर प्रभु की जय बोलो।...'

— इत्यादि प्रकार से भक्ति करते हुए यात्री जयपुर नगरी की ओर उड़े जा रहे थे। ज्येष्ठ महीने की गर्मी के चार बजे थे, परंतु हम सबको तो शीतलता का ही अनुभव हो रहा था... गुरुचरणों की छाया में तो चैतन्य की शीतलता ही होगी न?... जहाँ जगत का कोई आताप नहीं पहुँच सकता, वहाँ सूर्य की गर्मी कहाँ से पहुँचेगी?

अभी तो भक्ति की धुन जम रही थी कि वायुयान नीचे उतरने लगा... क्योंकि उसे बीच में आधा घंटा उदयपुर रुकना था... उदयपुर के हवाई अड्डे पर सैकड़ों भक्तजन गुरुदेव का

स्वागत करने के लिये आये थे। गुरुदेव ने आनंदपूर्वक चैतन्यतत्त्व की महिमा बतलाई... अहा, गुरुदेव ने आकाश से उतरकर हमें आत्मस्वभाव की महिमा बतलाई... इसप्रकार उदयपुर के मुमुक्षु प्रसन्न हो रहे थे।

उदयपुर आधा घंटा रुककर साढ़े चार बजे वायुयान पुनः उड़ चला... भक्ति की धुन भी प्रारंभ हो गई। इसप्रकार संतों के साथ आनंद करते-करते उत्तम भावना भाते-भाते जैनपुरी-जयपुर की ओर जा रहे थे... ठीक साढ़े पाँच बजे वायुयान जयपुर उतरा। सेठ श्री पूरणचंदजी गोदीका की अध्यक्षता में जयपुर के मुमुक्षुओं ने उमंगपूर्वक गुरुदेव का स्वागत किया... और इसप्रकार गुरुदेव के साथ गगनयात्रा समाप्त हुई।

जैनधाम जयपुर नगर में—

दिगंबर जैन बड़े मंदिरजी में दर्शन के पश्चात् दूसरे दिन ज्येष्ठ कृष्णा छठ के प्रातःकाल पूज्य गुरुदेव का भव्य स्वागत हुआ। जयपुर के तथा बाहर से आये हुए हजारों भक्तों ने पूज्य गुरुदेव का हार्दिक स्वागत किया। जयपुर नगर यों ही शोभायमान है... परंतु जब धामधूम से गुरुदेव का स्वागत हुआ, तब तो जयपुर सचमुच जैनपुरी लग रहा था। गुजरात के लोगों की सफेद पोषाक और राजस्थानी स्त्री-पुरुषों के रंगबिरंगे वस्त्र मिलकर साधर्मियों के मेले का सुंदर वातावरण बन गया था, जो यह प्रगट करता था कि धार्मिक भावना में देश-देश के कोई भेद बाधक नहीं होते। साधर्मी-मिलन का सुंदर दृश्य देखकर आनंद होता था।

नगर के मुख्य मार्गों पर होता हुआ, पचास जितने द्वारों सें (अकलंक द्वार, कुन्दकुन्द द्वार, टोडरमल द्वार, जयचंद द्वारा आदि) गुजरता हुआ स्वागत-जुलूस रामलीला मैदान में पहुँचा और वहाँ गुरुदेव ने मंगलाचरण सुनाकर चैतन्यतत्त्व की महिमा बतलायी।

जयपुर में सेठ श्री पूरणचंदजी गोदीका के भवन में पूज्य स्वामीजी विराजमान थे। और प्रातः-दोपहर श्री टोडरमल स्मारक भवन के विशाल सुसज्जित हॉल में प्रवचन द्वारा अध्यात्म-रस की वर्षा करते थे। जयपुर की तथा बाहर की जनता ने अच्छा लाभ लिया। प्रवचन के पश्चात् वीतराग विज्ञान के करीब बीस शिक्षण शिविर चलते थे और छोटे-बड़े हजारों जिज्ञासु वीतरागी विद्या का लाभ लेते थे।—इसप्रकार वीतराग विज्ञान के प्रचार का वह उत्सव बीस

दिन तक चलता रहा और हजारों नर-नारी एवं बालकों ने लाभ उठाया। तारीख 4-6-71 को उत्सव की पूर्णाहुति हुई और तारीख 5-6-71 के प्रात:काल जयपुर की जैन जनता ने पूज्य गुरुदेव को हार्दिक विदाई दी। पूज्य गुरुदेव यात्रियों सहित वायुयान द्वारा पुनः अहमदाबाद पधारे और एक दिन रुककर तारीख 6-6-71 के प्रात:काल भावनगर पधारे, जहाँ उनका उल्लासपूर्ण हार्दिक स्वागत हुआ।

तारीख 6 से 9 तक चार दिन तक प्रातः एवं दोपहर दो बार भावनगर की जनता को अध्यात्म-रस का पान कराने के पश्चात् तारीख 10-6-71 के प्रात:काल पूज्य स्वामीजी का सोनगढ़ में मंगल पुनरागमन हुआ, जहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया। इसप्रकार दो महीने से सोये हुए सोनगढ़ के वातावरण में मानो पुनः जागृति आ गई है। स्वर्णपुरी में अध्यात्म की ध्वनि गूँजने लगी है। प्रतिवर्ष की भाँति भाद्रपद मास में लगनेवाले प्रौढ़ शिक्षण-शिविर का आयोजन इस वर्ष भी सोनगढ़ में किया जायेगा।

लक्ष-पक्ष-दक्ष-प्रत्यक्ष

आत्मा का जो परमार्थ स्वभाव सत् है, उसको लक्ष में लेकर उसका पक्ष करना एवं उसमें दक्ष होकर उसे स्वानुभव-प्रत्यक्ष करना चाहिये।

* * *

आत्मा भिन्न है

जिसप्रकार म्यान से तलवार भिन्न है,
जिसप्रकार वस्त्र से शरीर भिन्न है;
जिसप्रकार शरीर से राग भिन्न है,
उसीप्रकार राग से आत्मा भिन्न है।

जयपुर के हवाई अड्डे पर स्वागत के लिये आतुर भक्तजन

भक्तजन आकाश की ओर देख रहे हैं कि—कब वायुयान आये और हम गुरुदेव का स्वागत करें।

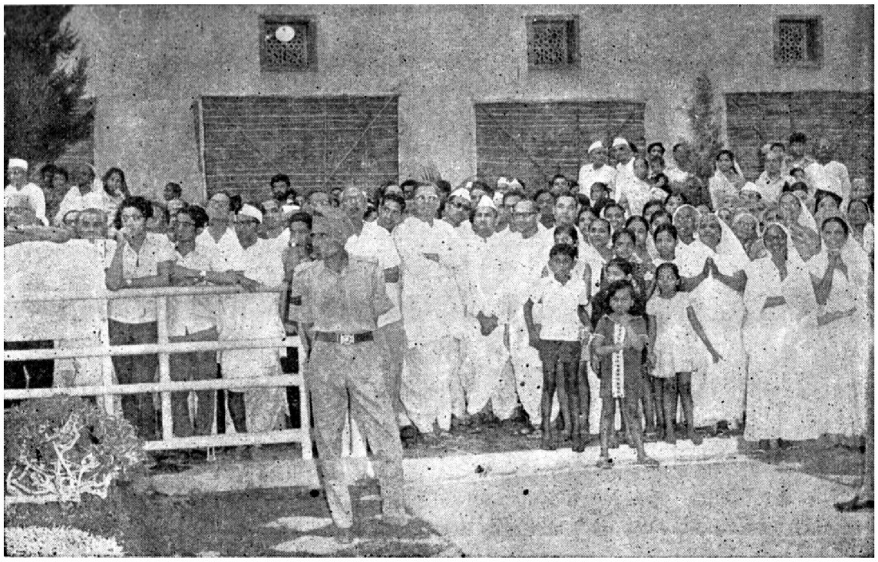

तव पाद-पंकज हों जहाँ उस देश को भी धन्य है...

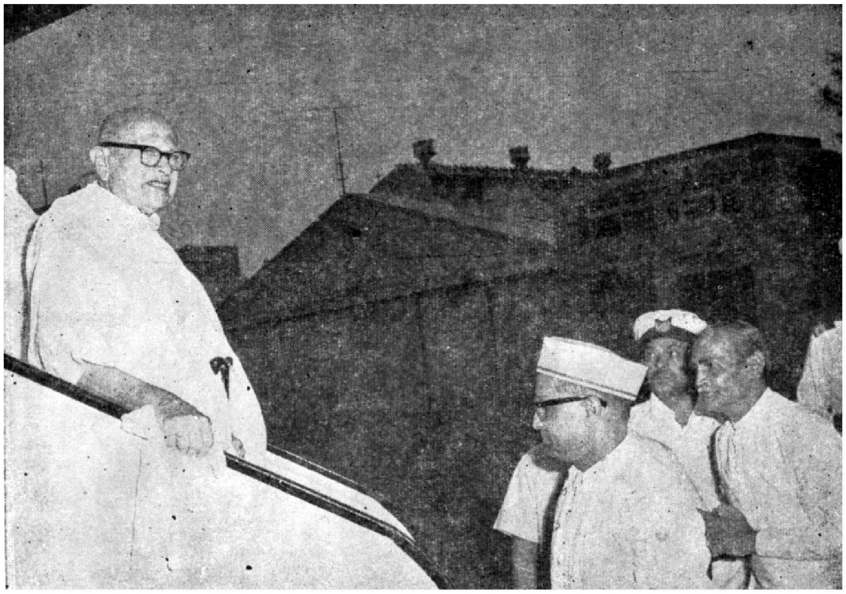

गुरुदेव प्रसन्नचित्त वायुयान से उतर रहे हैं। सेठ श्री पूरणचंद्रजी गोदीका तथा श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी आदि हर्षोल्लासपूर्वक स्वागत करते हुए कहते हैं कि—

पधारो गुरुदेव... पधारो... हमारा जयपुर नगर आज पावन हुआ

जेष्ठ कृष्णा पंचमी (ता. 15-5-71) के सायंकाल साढ़े पाँच बजे जयपुर हवाई अड्डे पर भक्तजन गुरुदेव का स्वागत कर रहे हैं।

गुरुदेव के साथ गगनविहारी यात्री हवाई अड्डे के बाहर आ रहे हैं

गुरुदेव! आपने गगनयात्रा तो करायी, अब वि-देहयात्रा करायें... और लोकशिखर तक सिद्धालय की यात्रा में हमें अपने साथ रखें... ऐसी भावना भा रहे हैं।

गुरुदेव के साथ यात्रा करनेवाली बहिनों के भी आनंद का पार नहीं था...

हमने भी गुरुदेव के साथ गगनयात्रा की—ऐसी प्रसन्नतापूर्वक बहिनें वायुयान से बाहर आ रही हैं।

जयपुर नगर में स्वागत का प्रारम्भिक दृश्य

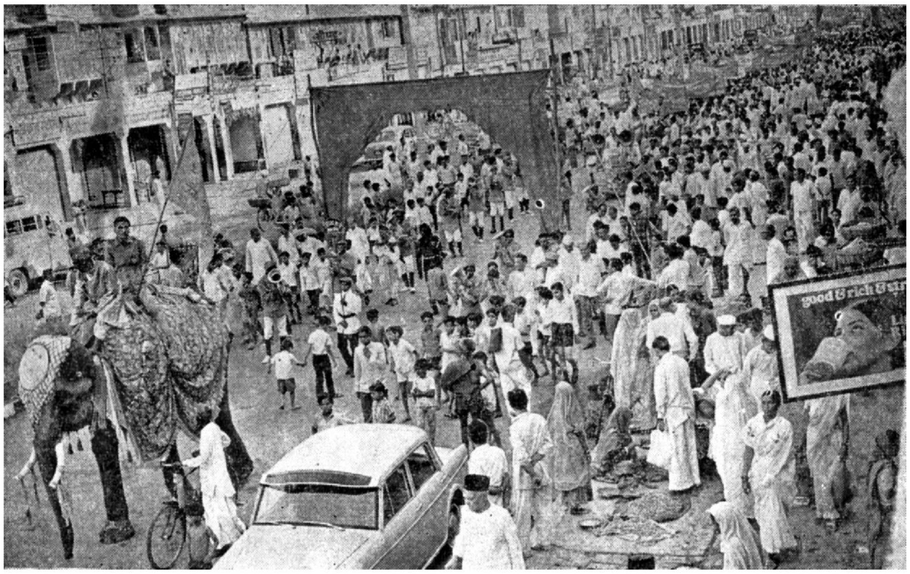

जेष्ठ कृष्णा 6 को जयपुर नगर में बड़े मंदिर से पूज्य गुरुदेव के स्वागत का भव्य जुलूस प्रारंभ हुआ और जौहरी बाजार में होकर रामलीला मैदान में आया।

जौहरी बाजार से गुजरता हुआ स्वागत-यात्रा का दृश्य

यह जैनपुरी आज जैनधर्म के जय-जयकार से गूँज रही है... जहाँ सैकड़ों जिनालय हैं और लाखों जिनबिंब हैं, उस नगरी में पूज्य गुरुदेव जैनधर्म का स्वरूप समझायेंगे।

श्री टोडरमल स्मारक-भवन में प्रवचन प्रारंभ होता है—

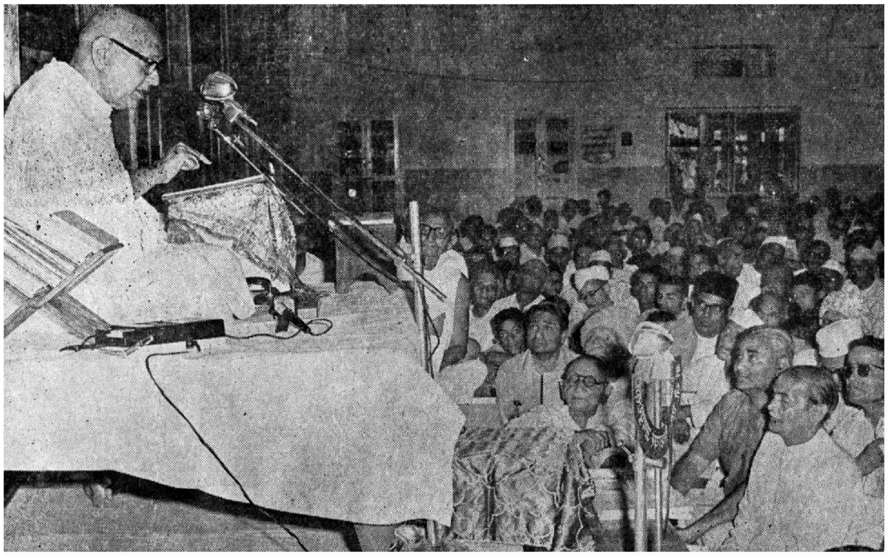

यह समयसार की छठवीं गाथा है। आनंद का पिपासु जीव पूछता है कि—प्रभो! शुद्ध आत्मा का स्वरूप कैसा है? उसे आचार्यदेव ज्ञायकभाव समझाते हैं।

भगवान पारसनाथ

[लेखांक : 6, अंक 312 आगे]

हमारे चरित्रनायक का जीव अंतिम अवतार में भगवान पारसनाथ के रूप में अवतरित होकर तेईसवाँ तीर्थंकर होता है। प्रथम मरुभूति के भव में अपने भाई कमठ के द्वारा पत्थर से कुचलकर मृत्यु हुई; हाथी के भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त कर आत्मा की पहिचानपूर्वक सर्पदंश से समाधि-मरण किया, अग्निवेग मुनि के भव में अजगर इनको निगल गया, वज्रनाभि चक्रवर्ती के भव में भील के बाण से मृत्यु हुई, आनंद के मुनि के भव में सिंह इनको खा गया, यही जीव आत्मा की आराधना में आगे बढ़ता हुआ अब अंतिम अवतार में वाराणसी नगरी में भरतक्षेत्र में तेईसवें तीर्थंकर के रूप में अवतार लेता है। जिसका वर्णन आप यहाँ पढ़ेंगे।

[10] अंतिम अवतार : तेईसवें तीर्थंकर एवं पंचकल्याणक

भगवान पारसनाथ जगत का कल्याण करने के लिये एवं अपनी आत्म-साधना पूर्ण करके परमात्मा होने के लिये अंतिम अवतार धारण करनेवाले थे, इस भरतक्षेत्र में चौथा आरा पूर्ण होने आया था। बाईस तीर्थंकर तो मोक्ष पधार गये; नेमिनाथ भगवान गिरनार से मोक्ष पधारे; इनको भी 83750 वर्ष व्यतीत हो गये। अयोध्या से थोड़ी दूर काशी देश में गंगा नदी के किनारे वाराणसी (बनारस) नगरी अत्यंत शोभायमान थी। इस नगरी में पहले सातवें सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर अवतार ले चुके थे, अब तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अवतार की तैयारी चल रही थी।

उस समय वाराणसी नगरी में जैनों की संख्या विपुल थी, भव्य जिनालय रत्नबिम्बों से शोभायमान थे, प्रजाजन दया धर्म का पालन करते थे। रत्नत्रयधारी अनेक मुनिजन नगरी को पावन करते रहते थे। [वर्तमान वाराणसी में जैनियों की संख्या अल्प रह गई है। जिनमंदिर भी तीन-चार ही हैं, अनेक कुधर्मों का यहाँ प्रचलन है। एक गृह-चैत्यालय में लाखों रुपये की

मूल्यवान हीरे में से बनाई गई पार्श्वप्रभु की प्रतिमा थी, वह भी अभी (वीर संवत् 2596में) कोई ठग दर्शन के बहाने आकर दिन को ही हाथ में से छीनकर ले गया। बनारस शहर से दस किलोमीटर की दूरी पर श्रेयांसनाथ तीर्थंकर का जन्मधाम सिंहपुरी (सारनाथ) है; यहाँ श्रेयांसनाथ स्वामी का मनोहर जिनालय है, एवं बीस किलोमीटर की दूरी पर चंद्रपुरी में चंद्रप्रभु भगवान का जन्मधाम गंगा नदी के किनारे ही आया है। यहाँ भी प्राचीन जिनमंदिर हैं। लेखक ने पूज्य श्री कहानगुरु के साथ इन तीर्थों की यात्रा की है, जिसका वर्णन 'मंगल तीर्थयात्रा' पुस्तक में से आप पढ़ लेना।]

चतुर्थ काल में जिसका अपार वैभव था, अरे! तीर्थंकर का जहाँ अवतार होनेवाला हो—ऐसी बनारसी नगरी की शोभा की क्या बात! राजमहल के आँगन में आकाश में से प्रतिदिन करोड़ों रत्नों की वृष्टि होती थी... पंद्रह महीने तक ऐसी रत्नवृष्टि होती रही, नगर निवासी समझ गये थे कि किसी महान मंगल-अवसर का यह चिह्न है।

विश्व प्रसिद्ध ऐसे इस बनारस तीर्थ में उस समय महा भाग्यवान विश्वसेन राजा राज्य करते थे (कोई इनको अश्वसेन भी कहते हैं) वे अत्यंत गंभीर थे, सम्यग्दृष्टि थे; अवधिज्ञान के धारक थे, वीतराग देव-गुरु के परम भक्त थे। इनकी महारानी ब्राह्मीदेवी (ब्रह्मदत्ता अथवा वामादेवी) भी अनेक गुणों से संपन्न थी। इन दोनों का आत्मा तो मिथ्यात्व की अशुचि से रहित था एवं इनका शरीर भी मल-मूत्र से रहित था। अहा! तीर्थंकर जैसे पवित्र आत्मा का जहाँ निवास होनेवाला है, वहाँ मलिनता किसप्रकार रह सकती है? सिद्धांत में कहा है कि तीर्थंकर को, इनके माता-पिता को, चक्रवर्ती को, बलदेव-वासुदेव-प्रतिवासुदेव को तथा जुगलियों को मल-मूत्र नहीं होते हैं।

एक बार महारानी ब्रह्मीदेवी पंचपरमेष्ठी भगवंतों के ध्यान सहित निद्राधीन थीं; यह दिन वैशाख कृष्णा द्वितीया का था; इस दिन पिछली रात्रि को इन्होंने 16उत्तम स्वप्न देखे, उसी समय ब्रह्मदत्ता माता के पवित्र उदर में पारसनाथ के जीव का आगमन हुआ; माता का हृदय आनंद से पुलकित हो गया। अहा! तीर्थंकर जिसके अंतर में पधारे, उसके महिमा की क्या बात! तीर्थंकर की दिव्य महिमा के चिंतवन द्वारा उन माता ने मानो सम्यग्दर्शन ही प्राप्त कर लिया हो। तीर्थंकर जैसा आत्मा जिसके अंतर में विराजमान हो, उसके अंतर में मिथ्यात्व किसप्रकार रह सकता है?

प्रात:काल होते ही माता जागृत हुईं, अंतर में पंचपरमेष्ठी का चिंतवन किया—यद्यपि ऐसे ही एक परमेष्ठी उनके हृदय में निवास कर रहे थे। राजसभा में जाकर माता ने सोलह उत्तम स्वप्नों का वर्णन महाराजा विश्वसेन के समक्ष किया; एवं स्वप्नों के मंगल फल में तीर्थंकर जैसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी—यह जानकर माता के आनंद का पार नहीं रहा। मानो हृदय-भूमि में धर्म के अंकुर प्रगट हो गये हों। वाह माता, तू धन्य हो गई! इन्द्र तथा इन्द्राणियों ने वाराणसी में आकर माता-पिता का सन्मान किया, गर्भ-कल्याणक के निमित्त भगवान की पूजा की, एवं छप्पन कुमारी देवियाँ माता की सेवा करने लगीं। वे बारंबार तीर्थंकर के गुणगान करती हुई माता के साथ आनंदकारी चर्चा करती थीं।

एक बार माता ने देवी से पूछा—हे देवी! इस जगत में उत्तम रत्न कहाँ रहता है?

देवी कहती है—माता! तुम्हारे उदर-भंडार में ही उत्तम रत्न निवास कर रहा है।

दूसरी देवी ने पूछा—माता का शरीर सुवर्ण के समान क्यों दिखलाई दे रहा है?

तीसरी देवी ने उत्तर दिया—माता को 'पारस' का स्पर्श हुआ है, इसलिये इनका शरीर सुवर्ण के समान दिखलाई देता है।

चौथी देवी ने कहा—माता! आपको कैसी भावना होती है?

माता कहती है—जगत में जैनधर्म का अधिक प्रचार हो, ऐसी भावना होती है।

पाँचवीं देवी कहती है—हे माता! आकाश में से इन रत्नों की वृष्टि क्यों होती है?

माता उत्तर देती है—हे देवी! मेरा पुत्र इस जगत में सम्यग्दर्शनादि वीतरागी रत्नों की वृष्टि करेगा, इसका यह चिह्न है कि रत्नों की वर्षा हो रही है।

छट्ठी देवी कहती है—माता, करोड़ों रत्नों की वर्षा होने पर भी इनको कोई क्यों नहीं लेता?

माता कहती हैं—पारसकुमार जो सम्यक्त्वादि रत्न प्रदान करेंगे, उनके समक्ष इन पंचरंगी जड़रत्नों का क्या मूल्य? अर्थात् किंचित् भी मूल्य नहीं।

सातवीं देवी कहती हैं—वाह माता! हम भी ऐसे चैतन्यरत्नों को अंगीकार करने के लिये समवसरण में आयेंगे।

आठवीं देवी कहती है—हमारा निवास रुचकगिरि में है; किंतु हमारे देवलोक से भी हमको यहाँ अच्छा लगता है, क्योंकि यहाँ आपकी तथा बाल–तीर्थंकर की सेवा करने का महान भाग्यशाली अवसर प्राप्त है। इन छोटे से भगवान को हम पालने में झुलायेंगे, लोरियाँ गायेंगे, इनको उल्लासपूर्वक बुलायेंगे, एवं इनको देख–देखकर आत्मा का धर्म प्राप्त करेंगे।

—इसप्रकार देवियाँ, माता के साथ प्रतिदिन आनंदकारी चर्चा करती थीं, एवं तीर्थंकर प्रभु की महिमा का वर्णन उल्लासपूर्वक करती थीं। माता के श्रीमुख से ऐसी मधुर आत्मस्पर्शी वाणी का प्रवाह बहता था—मानो इनके मुख से अंदर में बैठे हुए पारसनाथ भगवान ही बोल रहे हों। जिसप्रकार महल में प्रकाशित दीपक संपूर्ण महल को प्रकाशमान करता है, उसीप्रकार माता के गर्भग्रह में रहनेवाला ज्ञानदीपक तीन ज्ञान के द्वारा माता के ज्ञान को भी प्रज्वलित करता था। गर्भ में रहे हुए ज्ञानवंत भगवान उस समय भी जानते थे कि मेरा चैतन्यतत्त्व इस देह के संयोग से सर्वथा भिन्न है, चेतनमय भाव मैं हूँ। इसप्रकार आनंद से दिन व्यतीत होते–होते पौष कृष्णा 11 ने आकर मंगल बधाई दी।

पौष कृष्ण 11 के उत्तम दिवस को तीर्थंकर का अवतार हुआ; बनारस नगरी में आनंद का वातावरण छा गया। केवल बनारस में ही नहीं, तीनों लोक में आनंद छा गया... स्वर्ग में भी उस समय मंगलवाद्य बजने लगे। इन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना कि भरतक्षेत्र में तेईसवें तीर्थंकर का अवतार हुआ है, इसलिये इन्द्र ने तुरंत इन्द्रासन से नीचे उतरकर भक्तिपूर्वक उन बाल–तीर्थंकर को नमस्कार किया, एवं ऐरावत हाथी के ऊपर बैठकर जन्मोत्सव करने के लिये बनारस में आ पहुँचा; साथ में अनेक देवों के विमान थे। कोई देव बाजे बजा रहे थे, कोई पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे; छोटे से भगवान को इन्द्र ने हाथी के ऊपर बिठाया... हाथी आकाश–मार्ग से भगवान की सवारी को मेरुपर्वत के ऊपर ले गया। हमें जो यह सूर्य–चंद्र दिखलाई देते हैं, इनसे भी अधिक ऊँचाई पर मेरुपर्वत पर प्रभु का जन्माभिषेक हुआ। उस समय प्रभु की दिव्य महिमा को देखकर अनेक देवों को सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। प्रभु तो सदा देह से भिन्न आत्मा को देखनेवाले थे, एवं उनके दर्शन से अनेक जीवों ने भी देह से भिन्न आत्मा को पहिचान लिया था। अहा प्रभु! आप तो जन्म–रहित हो गये हैं, एवं आपकी भक्ति से हमारा जन्म भी सफल हो गया है; इसप्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र–इन्द्राणी भी आनंद से नृत्य करने लग गये; एवं प्रभु का नाम 'पार्श्वकुमार' रखा।

प्रभु के जन्माभिषेक के समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। आश्चर्य है कि आकाश में कहीं भी फूल के वृक्ष नहीं थे, फिर भी पुष्पों की वृष्टि हो रही थी! अनंत आकाश को भी ऐसा लगा कि—अहा, इन भगवान का ज्ञान तो मेरे से भी विशाल है। इसलिये नम्रतापूर्वक यह आकाश भी पुष्पों द्वारा प्रभु की पूजा करता था; एवं जिसप्रकार मैं निरालंबी हूँ, इसीप्रकार इन भगवान का ज्ञान भी निरालंबी है—इसप्रकार निरालंबीपने के आनंद से उल्लसित होता हुआ यह आकाश पुष्पवृष्टि के द्वारा प्रभु का जन्मोत्सव मना रहा था।

जन्माभिषेक के समय उछलनेवाला दूध के समान जल का प्रवाह तो ऐसा दिखलाई दे रहा था, मानो क्षीर समुद्र भी उड़कर मेरुपर्वत के ऊपर प्रभु के दर्शन करने आ गया हो! एवं नीचे मध्यभाग में प्रदक्षिणा करनेवाले सूर्य-चंद्र-तारागण मानो प्रभु के चरणों की सेवा करने आ गये हों एवं शाश्वत् दीपकों के द्वारा प्रभु की आरती कर रहे हों।

मेरुपर्वत के ऊपर पारसकुमार का जन्माभिषेक करने बाद इन्द्र स्तुति करते हुए कहा है कि प्रभु! आप तो पवित्र हो, आपका अभिषेक करने के बहाने वास्तव में तो हमने अपने पापों को धो डाला है। इन्द्राणी कहती है कि प्रभु! आपको लेकर मानो मैं मोक्ष को ही अपनी गोद में ले रही हूँ, ऐसा मेरा आत्मा उल्लसित हो जाता है; एवं रत्नाभूषणों के द्वारा आपको अलंकृत करते हुए मानों धर्म रत्नों के द्वारा मैं अपने आत्मा को ही अलंकृत कर रही हूँ—ऐसा आनंद उत्पन्न होता है।—ऐसा कहते हुए इन्द्राणी ने बाल-तीर्थंकर को स्वर्ग के वस्त्राभूषण पहिनाकर रत्न का तिलक किया। इसप्रकार पारसकुमार का अभिषेक करके, देवलोक के दिव्य वस्त्राभूषण पहिनाकर सभी देव बनारस नगर में आये। ब्रह्मदत्ता (वामादेवी) माता को उनका प्यारा पुत्र सौंपते हुए इन्द्र कहता है कि—हे माता! आप धन्य हो... आप जगत की माता हो... आपने इस जगत को ज्ञान-प्रकाशक दीपक प्रदान किया है... हे माता! तुम्हारा पुत्र तीन जगत का नाथ है।

बनारस में स्थान-स्थान पर आनंदोत्सव मनाया जा रहा है। तीर्थंकर के आत्मा को देखकर सहस्त्रों जीवों ने चैतन्य की महिमा को समझकर आत्मज्ञान प्राप्त किया। अहा, भगवान स्वयं केवलज्ञान प्राप्त करके धर्मोपदेश प्रदान करेंगे, धर्मवृद्धि करेंगे, उस समय की क्या बात! किंतु उनका जन्म होते ही जीवों में स्वयमेव धर्म की वृद्धि होने लगी। जिसप्रकार सूर्य के उदय होने से कमल स्वयं खिलने लगते हैं, उसीप्रकार तीर्थंकर सूर्य का उदय होने से भव्य जीवोंरूपी

कमल स्वयं खिलने लगे। जन्मोत्सव की खुशी में माता–पिता के सन्मुख देवों ने सुंदर नाटक करके भगवान के पूर्व के नौ भव बतलाये; इसमें हाथी के भव में मुनि के उपदेश से सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का दृश्य देखकर अनेक जीवों ने प्रतिबोध प्राप्त किया; बाद में इसी जीव ने मुनिदशा को धारण करके उत्तम क्षमा का किसप्रकार पालन किया, वह भी बतलाया। पारसकुमार का जन्मोत्सव मनाकर माता–पिता को उत्तम वस्तुएँ भेंट देकर वे इन्द्र स्वर्ग में चले गये। उस समय स्वर्ग से भी वाराणसी के वैभव की अधिक वृद्धि हो गई थी, क्योंकि तीर्थंकर जैसे पुण्यात्मा वहाँ विराजमान थे। तीर्थंकर जैसे महात्मा के संसर्ग में कौन सा कल्याण प्राप्त न हो!!

भगवान पारसकुमार धीरे–धीरे बड़े होने लगे। उनके अंगूठे में इन्द्र ने अमृत रखा था, जिसको चूसकर उनका पोषण होता था; छप्पन कुमारी देवियाँ उनको स्नान करवाकर शृंगार कराती थीं, जिसको देखकर माता की दृष्टि स्थिर हो जाती थीं, एवं उनका हृदय तृप्त होकर उल्लास से मंगल गीत गाती थीं। कुंवर को भी माता के प्रति अति स्नेह था। प्रतिदिन सहस्रों नगरवासी इनके दर्शन करने को आते थे एवं इनके दिव्यरूप को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे। स्वर्ग के देव भी छोटे–छोटे बालकों का रूप धारण करके पारसकुमार के साथ खेलने आते थे। अहा! तीर्थंकर का सहवास किसको रुचिकर न होगा। इन देवकुमारों के साथ पारसकुमार नित्य नवीन–नवीन प्रकार की क्रीड़ा करते हुए, कभी धर्म की चर्चा करते हुए आत्मा के अनुभव का रहस्य भी समझाते थे। अहा, छोटे से बालक के श्रीमुख से जब आत्मा के अनुभव का अमृत प्रवाहित होता था, तब इन छोटे से तीर्थंकर की वीतरागरसयुक्त वाणी को श्रवण करके जीवों को कैसा आनंद होता होगा! उनकी मुद्रा के दिव्य शांतभाव मुमुक्षुओं को अतीन्द्रिय आत्मसुख की प्रतीति उत्पन्न कराते थे। केवलज्ञान होने के बाद की तो क्या बात! परंतु तीर्थंकर प्रकृति का उदय आने से पहले ही उसके निमित्त से धर्मवृद्धि होने लगी।

भगवान जन्म से ही मति–श्रुत–अवधि तीनों ज्ञान के धारक थे, एवं क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे; उनका स्वभाव अति सौम्य था। आठ वर्ष की आयु में वे पाँच अणुव्रत पालन करने लगे थे। किसी के समीप विद्या सीखना तो उनको था नहीं। आत्मविद्या को जाननेवाले भगवान को अन्य सभी विद्याएँ स्वयं ही प्रगट हो गईं थीं; उनको चैतन्य–विद्या भी वृद्धि को प्राप्त हो रही थी।

बाल्यकाल व्यतीत होने के बाद प्रभु यौवनावस्था को प्राप्त हुए; इनके शरीर का अद्भुत रूप था! उनके शरीर में कभी पसीना अथवा मल-मूत्र नहीं होते थे। उनका रक्त भी श्वेत रंग का था। उत्तम लक्षणों से युक्त इनके शरीर में से चारों ओर सुगंध फैलती थी; सौ वर्ष की आयु थी। बाईसवें नेमीनाथ तीर्थंकर के बाद 83750 वर्ष व्यतीत हुए, तब तेईसवें पार्श्वनाथ तीर्थंकर का अवतार हुआ। अब वे युवावस्था में थे।

युवराज राजकुमार को देखकर एकबार माता-पिता ने उनसे विवाह करने के लिये अनुरोध करते हुए किसी सुंदर राजकन्या के साथ विवाह करने को कहा, किंतु पारसकुमार ने अरुचि बतलाई; तब माता ने गद्‌गद् होकर कहा कि हे कुमार! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा अवतार वैराग्य के लिये हुआ है एवं तुम तीर्थंकर होनेवाले हो, इसलिये मैं अपनी कुक्षि को धन्य समझती हूँ। किंतु भूतकाल में ऋषभादि तीर्थंकरों ने भी विवाह करके जिसप्रकार माता-पिता की इच्छा पूर्ण की थी, उसीप्रकार तुम भी हमारी इच्छा पूर्ण करो.....

पारसकुमार गंभीरतापूर्वक कहते हैं कि हे माता! ऋषभदेव की बात अलग थी; मैं सभी बातों में उनके समान नहीं हूँ; उनकी आयु तो बड़ी लंबी थी, जबकि मेरा आयु तो मात्र सौ वर्ष की ही है। अल्पकाल में ही संयम धारण करके मुझे अपनी आत्म-साधना पूर्ण करना है; इसलिये मुझे संसार के बंधन में पड़ना उचित नहीं है।

वैराग्यवान राजकुमार की यह बात सुनकर माता-पिता के चक्षु अश्रुओं से भींग गये.... कुछ देर के लिये वह उदास हो गये... किंतु अन्त में उन्होंने समाधान किया..... वे भी तो चतुर थे..... उन्होंने विचार किया कि पारसकुमार तो तीर्थंकर होने के लिये अवतरित हुए हैं.... संसार के भोगहेतु इनका अवतार नहीं है, वह तो आत्मा के मोक्ष की साधना करने के लिये है। पुत्र-मोह के कारण ही हमको दुःख होता है; किंतु भगवान तो निर्मोह होकर जगत के अनेक जीवों को मोक्ष का मार्ग बतलायेंगे एवं हमें भी इसी मार्ग पर जाना है। इसप्रकार वे भी धर्म-भावना सहित उत्तम जीवन व्यतीत करते थे। पारसकुमार राजवैभव के मध्य होते हुए भी अलिप्त रहकर परम वैराग्यमय आदर्श जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक समय वे वन-विहार करने निकले, तब एक घटना हुई।

(कौन सी घटना हुई ?—आगामी अंक में पढ़िये)

अज्ञानप्रवृत्ति कब छूटेगी ?

जिसे बंधन से छूटने की भावना है, ऐसा शिष्य जिज्ञासु होकर पूछता है कि—प्रभो! अनादिकालीन अज्ञान से जो यह कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति है, उसका अभाव कब होगा? अरे, चैतन्य को दु:ख देनेवाली यह अज्ञान-प्रवृत्ति कब छूटेगी? प्रभो! अज्ञान ही इस संसार का मूल है—ऐसा आप कहते हैं, तो अब उस अज्ञान का अभाव कैसे होगा? शिष्य को अज्ञान से शीघ्र छूटने की लालसा जागृत हुई है, इसलिये उत्कंठापूर्वक श्रीगुरु से ऐसा प्रश्न पूछता है। अनादिकाल तो ऐसे अज्ञान में व्यतीत हो गया, परंतु अब शिष्य जागृत हुआ है... वह दीर्घकाल तक ऐसे अज्ञान में नहीं रहेगा, उसके धर्मलब्धि का काल निकट आ गया है। वह शिष्य पूछता है कि—प्रभो! आत्मा को बंधन का कारण ऐसा यह अज्ञान कब दूर होगा? शिष्य अज्ञान को नष्ट करने का उपाय जानकर उसे शीघ्र ही दूर करने के लिये तत्पर हुआ है।

ऐसे शिष्य को आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि सुन!—

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से॥71॥

आत्मा चैतन्यस्वभावमय है, वह क्रोधादिमय नहीं है, और क्रोधादि वे आस्रवमय हैं वे चैतन्यमय नहीं हैं—इसप्रकार दोनों की भिन्नता जानकर जीव जब भेदज्ञान करता है, तब उसके अज्ञान का नाश होता है; और अज्ञान से उत्पन्न हुई ऐसी विकार के सथ की कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति भी छूट जाने पर उसको बंधन भी नहीं होता।

इस जगत में वस्तुएँ कैसी हैं ?

इस जगत में जो भी वस्तु है, वह अपने स्वभावमात्र ही है। आत्मा वस्तु है, वह अपने ज्ञानस्वभावमात्र ही है। निश्चय से जो ज्ञान का परिणमित होना, वह आत्मा है। ज्ञान के परिणमन में श्रद्धा-ज्ञान-आनंदादि समस्त भावों का समावेश हो जाता है, किंतु क्रोधादि का समावेश उसमें नहीं होता। अथवा, निश्चयरत्नत्रयरूप जो भाव, वह ज्ञान का परिणमन है, वह

आत्मा का स्वभाव है, और व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभभाव, वह वास्तव में ज्ञान का परिणमन नहीं है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। देखो, यह भेदज्ञान! ऐसा भेदज्ञान ही अज्ञान के नाश का उपाय है। जब ऐसा भेदज्ञान करे, तभी अज्ञान का नाश होता है। ऐसे भेदज्ञान के बिना कभी अज्ञान दूर नहीं होता।

ज्ञान में और क्रोध में किसप्रकार भिन्नता है ?

ज्ञान में क्रोध नहीं है और क्रोध में ज्ञान नहीं है। जीव जब स्वभावोन्मुख होकर ज्ञानरूप से परिणमित होता है, तब उस ज्ञान के परिणमन में ज्ञान का ही भासन होता है किंतु क्रोधादि का भासन नहीं होता; इसलिये ज्ञान में क्रोध नहीं है। और जब क्रोधादि में एकरूप होकर परिणमन करता है, तब उस जीव को उस क्रोधादि के परिणमन में क्रोधादि परभाव ही भासित होते हैं, किंतु उसमें ज्ञान का आभास नहीं होता, क्योंकि क्रोधादि ज्ञान नहीं है। इसप्रकार ज्ञान और क्रोधादि में अत्यंत भिन्नता है; इसलिये ज्ञानस्वभावी आत्मा की क्रोधादि के साथ एकता नहीं, किंतु भिन्नता है।

देखो, यह अंतर के वेदन की बात! जहाँ स्वभावोन्मुख होकर ज्ञानरूप से परिणमित हुआ, वहाँ क्रोधादि से भिन्नतारूप परिणमन हुआ। वहाँ क्रोध से भिन्न ज्ञान का वेदन हुआ। उस वेदन में क्रोधादि की उत्पत्ति नहीं होती। ज्ञान की और क्रोध की भिन्नता ज्ञानी के वेदन में स्पष्ट भासित होती है। जहाँ परिणति स्वभावोन्मुख हुई, वहाँ क्रोध से विमुख हुई। परिणति ज्ञानस्वभाव की ओर झुके और उसमें राग की रुचि भी रहे—ऐसा कभी नहीं होता। जहाँ ज्ञान की रुचि है, वहाँ राग की रुचि नहीं है; और जहाँ राग की रुचि है, वहाँ ज्ञान की रुचि नहीं है। ज्ञान में और राग में एकस्वभावपना नहीं है। अस्ति से समझाकर आचार्यदेव ने कैसा स्पष्ट भेदज्ञान कराया है! ऐसा भेदज्ञान करते ही अज्ञान नष्ट हो जाता है।—यह अपूर्व धर्म है।

❀ ❀ ❀

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका कार्य ज्ञान से बाहर नहीं होता। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य भावों में आत्मा का कर्तृत्व मानना, यह अज्ञानी का मोह है। भेदज्ञान द्वारा 'ज्ञान' और 'परभाव' को भिन्न जानकर जो परभाव का कर्तृत्व छोड़ता है और ज्ञानभावरूप से परिणमन करता है, वह ज्ञानी है।

चैतन्य की चर्चा

— चैतन्यस्वभाव की ओर के वेग में आत्मा का अनुभव होता है; विकल्प के वेग में आत्मा का अनुभव नहीं होता।

— 'आनंद, सो मैं... दु:ख मैं नहीं'—ऐसे वेदन द्वारा भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है।

— ध्रुव भी एक अंश है, वह संपूर्ण आत्मा नहीं है।

— निर्विकल्प शुद्ध आत्मा का अनुभव, वह निर्विकल्प शुद्ध-प्रमाण है; उसमें द्रव्य और पर्याय दोनों आ जाते हैं, परंतु उनका भेद नहीं रहता।

— अरे, यह जन्म-मृत्यु की घाटी, उससे बाहर निकलने के काल में निद्रा तो कहाँ से आये ? जो मुमुक्षु आत्म-साधना के लिये जागृत हुआ, उसे सोना नहीं भाता।

— निर्विकल्प अनुभव के समय का जो स्वसंवेदन ज्ञान है, वह स्वयं प्रमाण है और वह शुद्धनय है। अनुभूति कहो या शुद्धनय कहो।

— आनंद को जानते हुए ज्ञान आनंदरूप होता है; परंतु राग को जानते हुए ज्ञान रागरूप नहीं होता, और जड़ को जानते हुए जड़रूप नहीं होता।

— सच्ची बुद्धि उसे कहा जाता है, जो राग से पार शुद्धात्मा का बोध करे।

— 'विभाव होने पर भी स्वभाव को कैसे देखना ?'—तो कहते हैं कि स्वभाव विद्यमान होने पर भी विभाव को देखना किसलिये ? विभाव होने पर भी दृष्टि को विभाव से हटाकर स्वभाव को देखना चाहिये, उसे देखते ही विभाव विलय को प्राप्त होता है; विभावरहित जो स्वभाव है, उसे देखने से विभाव की चिंता नहीं रहती।

— शुद्धात्मा का विकल्प किया, इसलिये निर्विकल्प अनुभव होगा—ऐसा नहीं है। विकल्प से पार होकर ज्ञान के बल से ही निर्विकल्प अनुभव होगा।

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य स्वामीजी सुखशांति में विराजमान हैं। दो महीने का विहार पूर्ण करके पूज्य स्वामीजी अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार तारीख 10 जून के प्रात: 7.00 बजे भावनगर से सोनगढ़ पधारे और मुमुक्षुओं ने हार्दिक भावभीना स्वागत किया। प्रतिदिन सवेरे श्री नियमसारजी पर तथा दोपहर को श्री समयसार नाटक पर स्वामीजी के भावपूर्ण प्रवचन हो रहे हैं।

आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर संपन्न

जयपुर—श्री पूरणचंदजी गोदीका तथा जयपुर समाज की भावनानुसार सोनगढ़ के आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजीस्वामी के मार्गदर्शन में श्री वीतरागविज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण समारोह दिनांक 15 मई से 4 जून तक अत्यंत उत्साहपूर्वक वातावरण में संपन्न हुआ, जिसमें सारे भारत के विभिन्न प्रांतों के हजारों जिज्ञासु नर-नारियों एवं बालकों ने पूज्य कानजीस्वामी के अमृतमयी प्रवचनों को श्रवण करके एवं प्रौढ़ शिक्षण शिविर में सम्मिलित होकर धर्मलाभ प्राप्त किया। जयपुर के 15 शिक्षण केन्द्रों में लगभग 2000 विद्यार्थियों ने धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। इसीप्रकार लगभग 200 शिक्षकों ने बालकों को धार्मिक शिक्षा देने के लिये प्रशिक्षण शिविर में भाग लिया। इन सभी को पूज्य कानजीस्वामी के करकमलों द्वारा दीक्षांत समारोह में उपाधियाँ वितरित की गईं। दिनांक 26मई को श्रुतपंचमी महोत्सव अंतर्गत जिनवाणी माता की विशाल रथयात्रा निकाली गई। श्री पंडित खीमंचदजी, पंडित फूलचंदजी शास्त्री, पंडित बाबुभाई, पंडित जुगलकिशोरजी (कोटा) व अन्य विद्वानों के धार्मिक प्रवचन हुए।

दिनांक 1 जून को श्री पंडित खीमचंदजी की अध्यक्षता में विद्वत् सम्मेलन हुआ, जिसमें पंडित प्रकाशजी हितैशी, डॉ. कस्तूरचंदजी कासलीवाल, श्री भंवरलालजी न्यायतीर्थ, डा. ताराचंद जैन बख्शी, पंडित मिलापचंदजी शास्त्री, पंडित हुकमचंदजी शास्त्री, ब्रह्मचारी

हरिलालजी, पंडित नेमिचंदजी रखियाल, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित युगलजी कोटा, पंडित चिमनलालजी, पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा, डॉ. सौभाग्यचंदजी अजमेर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित विजयकुमारजी जोबनेर, पंडित गेंदालालजी शास्त्री बूंदी, पंडित चुनीलालजी चंदेरी, पंडित देवचंदजी, पंडित अभयचंदजी, पंडित जवाहरलालजी विदिशा, पंडित अमोलकजी बंधु, ब्रह्मचारी हेमराजजी, पंडित तूपकरजी, पंडित भीषीकरजी, पंडित झमकलालजी, पंडित मनोहरलालजी, डॉ. प्रतिभा जैन, प्रो. निहालचंदजी, प्रो. प्रवीणचंदजी, डॉ. गोपीचंदजी पाटनी, पंडित गुलाबचंदजी दर्शनाचार्य, ब्रह्मचारी राजकुमारजी आगरा, श्री सेठ भगवानदास शोभालालजी सागर, श्री सेठ नेमीचंदजी पांड्या गोहाटी, श्री डालचंदजी सर्राफ भोपाल, श्रीर रतनलालजी पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, श्री हीरालालजी भावनगर, श्री राजमलजी कुचामन, श्री चन्दुभाई, श्री देवीलालजी उदयपुर, श्री पदमचंदजी आगरा, श्री शांतिसागरजी दिल्ली, श्री सेठ साहू शांतिप्रसादजी, श्री सेठ भागचंदजी सोनी, श्री सुकुमालचंदजी, श्री परसादीलालजी पाटनी, श्री भगतरामजी आदि सैकड़ों विद्वानों एवं श्रीमानों ने इन समारोह में भाग लिया।

दिनांक 2 जून को मध्यप्रदेशी मुमुक्षु मंडल का अधिवेशन हुआ और राजस्थान व उत्तरप्रदेशीय मुमुक्षु मंडलों का गठन हुआ एवं रात्रि को जैन संस्कृत कालेज के छात्रों द्वारा 'आचार्यकल्प' नाटक का प्रदर्शन किया गया। दिनांक 3 जून को दीक्षांत समारोह संपन्न हुआ। दिनांक 4 जून को सारे नगर में 21 हाथी, घोड़े, लवाजमे, बैंडबाजे, भजन मंडलियों सहित विशाल रथयात्रा रूप में अभूतपूर्व जुलूस निकला जो लगभग 1 मील लंबा था और जिसमें करीब 60 हजार नर-नारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया, जिससे यहाँ जैनधर्म की आध्यात्मिक प्रभावना हुई। श्री सेठ पूरणचंदजी गोदीका, श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी, श्री नेमीचंदजी पाटनी, पंडित हुकमचंदजी शास्त्री आदि के दिन-रात अथक परिश्रम से यह सारा आयोजन अत्यधिक सफल हुआ, जिनके सभी को पंडित बाबुभाई व श्री नेमीचंदजी पाटनी ने समापन समारोह में धन्यवाद दिया।

प्रचारमंत्री : डॉ. ताराचंदजी जैन बख्शी

भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण-महोत्सव की सफलता हेतु

पूज्य श्री कानजीस्वामी का आशीर्वाद

भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव सन् 1974 में पूरे वर्ष धामधूम से मनाने हेतु जिस समिति का गठन किया गया है, उसकी मीटिंग तारीख 19 तथा 20 मई को जयपुर में थी। इस अवसर पर कमेटी के अध्यक्ष श्री साहू शांतिप्रसादजी ने महोत्सव की रूपरेखा समझाकर उसमें समस्त जैन समाज का सहयोग माँगा तथा पूज्य कानजीस्वामी से मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद की प्रार्थना की। पूज्य स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि—

समस्त जैन समाज मिलकर आनंदसहित भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव मनाये, यह तो बड़ी अच्छी बात है... और जैनधर्म की प्रभावना का कारण है। आपसी मतभेद भूलकर सबको इस कार्य में सहयोग देना चाहिये। जैनों के सब संप्रदाय मिलकर भगवान महावीर के मार्ग का प्रकाशन करें, इसमें किसी का विरोध नहीं होना चाहिये। महावीर के मार्ग में परस्पर क्लेश होना, यह ठीक नहीं है। जैनों की संख्या भले ही थोड़ी हो, परंतु जैन समाज की शोभा बढ़े, दुनिया में उसकी महिमा फैले और भगवान के उपदेश का प्रचार हो—यह बहुत आवश्यक है।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

नये प्रकाशन

'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' (तीसरी आवृत्ति)

धर्म-जिज्ञासुओं के लिये यह महान उपकारी जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रंथ है, जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान वस्तु है। इसके कुछ मुख्य विषय—

1- सर्वज्ञता के निर्णय सहित क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उसमें दोष कल्पना का निराकरण।

2- सम्यक् अनेकांतगर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म ये पाँच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकांत।

3- सम्यक् अनेकांत, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार। 4- द्रव्य-पर्याय संबंधी अनेकांत। 5- अनंत पुरुषार्थ। आदि

बढ़िया जिल्द; सुंदर कागज व आकर्षक बढ़िया टाईप में उत्तम छपाई।

पृष्ठ संख्या 384, मूल्य 3.00

लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका— (आठवीं आवृत्ति) जिज्ञासुओं की अधिक माँग होने से प्राय: प्रतिवर्ष छपायी जाती है। यह पुस्तिका प्रत्येक धर्म-जिज्ञासु के पास होना आवश्यक है।

पृष्ठ संख्या (छोटी साइज में) 102, मूल्य : 25 पैसे

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री अष्टपाहुड़ : (कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित ग्रंथ पर पण्डितेन्द्र स्व. श्री जयचंदजी छाबड़ा की ढूंढ़ारी भाषा-वचनिका का अक्षरश: अनुवाद) करीब 25 वर्ष से अप्राप्त था। मुमुक्षुओं की माँग होने से 2500 प्रतियाँ श्री सेठी ग्रंथमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित कराई गई थीं जो छपते ही बिक गईं। 350 प्रतियाँ बड़े आर्डरों में से कम करके बचायी गई हैं। जिन भाईयों को आवश्यकता हो, मँगवा लेवें।

पृष्ठ संख्या (बड़ी साइज में) 380, मूल्य : 4.50

मिलने का पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-4, बापूनगर, जयपुर-4 (राज.)

आत्मधर्म के ग्राहकों से

आपका प्रिय मासिक-पत्र आत्मधर्म प्रतिमास की 15वीं तारीख को रवाना किया जाता है। यदि आपको समय पर न मिले अथवा अन्य कोई शिकायत हो तो कृपया निम्न पते पर सूचित करें।

मैनेजर,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

समझ में आता है कुछ ?—आत्मा की समझ ही सच्चा विश्राम है; बाकी तो सब व्यर्थ है। यह तो भगवान की दिव्यध्वनि में से आयी हुई बात है। संतों ने आनंद का भंडार खोल दिया है; यह तो धर्म की कमाई का अवसर है।

❀

चैतन्य के स्वभाव की शक्ति ऐसी है कि राग क अवलंबन बिना एक समय में तीन काल तीन लोक को जान ले। ऐसे चैतन्य-प्राणों से त्रिकाल जीनेवाला आत्मा है।

❀

परसन्मुख देखने से धर्म हो—ऐसा स्वरूप नहीं है; अंतर में अपने स्वभाव की ओर उन्मुख होने पर आत्मा स्वयं अपनी निर्मल पर्याय को करता है। अतीन्द्रिय आनंद का नाथ स्वयं अंदर विराजमान है।

❀

अहो! सर्वज्ञ का यह मार्ग!... यह जगत से भिन्न है। अंतर में सर्वज्ञस्वभाव-सन्मुख होने से आनंद के अनुभव सहित मोक्षमार्ग प्रगट होता है... भगवान! अंतर में दृष्टि तो डाल!

❀

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश–टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय–संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग–४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–१	०.७५
	,, ,, ,, भाग–३	०.५०
९	चिद्‌विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म–संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	शास्त्र का अर्थ समझने की पद्धति	०.१०
१७	श्रावक धर्मप्रकाश	२.००
१८	अष्ट–प्रवचन (भाग–१)	१.५०
१९	अष्ट–प्रवचन (भाग–२)	१.५०
२०	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
२१	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	१.००
२२	बालबोध पाठमाला, भाग–१	०.४०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग–२	०.५०
२४	बालबोध पाठमाला, भाग–३	०.५५
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–१	०.५०
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–२	०.६५
२७	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२८	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२९	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
३०	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र)	६.००
३१	मोक्षमार्गप्रकाशक ७वाँ अध्याय	०.५०
३२	जैन बालपोथी भाग–२	०.४०
३३	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	प्रेस में
३४	तत्त्वनिर्णय	०.२०
३५	शब्द–कोष	०.२०
३६	हितपद संग्रह (भाग–२)	०.७५

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)